उपनिवेशवाद विरोधी पाठक होने की ज़िद

मोना दास

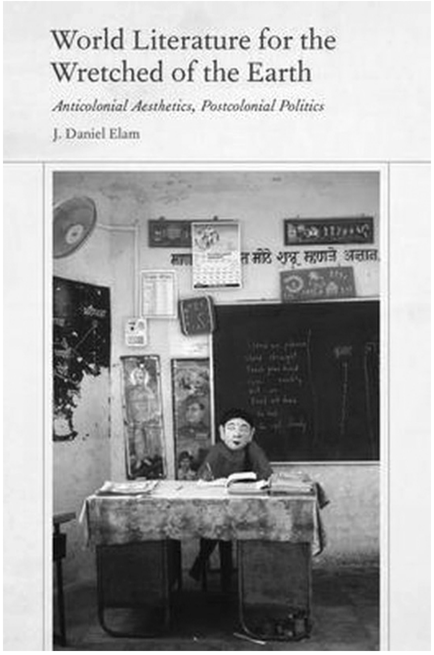

वर्ल्ड लिटरेचर फ़ॉर द रेचेड ऑफ़ द अर्थ (2020)
जे. डेनियल एलम
फ़ॉर्डहैम युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.
पृष्ठ : 360.
मूल्य : ₹ 297.

'इंसान सोचता है, यह एक जैविक तथ्य है। वह *क्या* सोचता है, एक समाजशास्त्रीय तथ्य है।' अमेरिकी मनोवैज्ञानिक एडवर्ड थॉर्नडाइक का हवाला देते हुए इस पंक्ति का उल्लेख आंबेडकर *शूद्र कौन थे* पुस्तक की प्रस्तावना में करते हैं। इसे हम कुछ यूँ भी कह सकते हैं कि आंबेडकर का अछूत होना एक समाजशास्त्रीय तथ्य है और यह तथ्य उनकी राजनीतिक सोच और हिंदू धार्मिक साहित्य की आलोचना को साकार करता है। यदि शूद्र होने का अर्थ मन और शरीर की ग़ुलामी है, तो बकौल फैनों, *धरती के अभागे* सभी उपनिवेशवासी शूद्र हैं जो मुक्ति की राजनीति का निर्माण इस समाजशास्त्रीय सोच के माध्यम से कर रहे थे। जे. डेनियल एलम अपनी किताब *वर्ल्ड लिटरेचर फ़ॉर द रेचेड ऑफ़ द अर्थ : एंटीकोलोनियल एस्थेटिक्स, पोस्टकोलोनियल पॉलिटिक्स* के ज़रिए उपनिवेशवाद विरोधी विमर्शों की वंशावली में उत्तर-औपनिवेशिक वैचारिकी की मदद से एक नई अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। वह उपनिवेशवाद विरोधी

20 Mona das_Layout 1 22-02-2024 16:21 Page 453

राजनीति को स्वयंप्रभुता /प्राधिकार-विरोधी (एंटी-ऑथॉरिटेरिअन) राजनीति के समकक्ष परिभाषित करते हैं। एंटी-ऑथॉरिटी या (रचयितावादी) स्वयंप्रभुता/प्राधिकार विरोधी राजनीति के ख़िलाफ़ पढ़ाई-लिखाई की एक ख़ास संस्कृति को, जिसमें पाठक आत्म-निपुणता के रचयितावादी दंभ से सचेत दूरी और विरोध रखता है, एक इंक़लाबी समतावादी उपनिवेशवाद विरोधी कार्य के रूप में देखते हैं।

इस किताब की खोज-बीन इस आधार पर टिकी हुई है कि पाठक बनना या बने रहना, प्रभुतावादी निपुणता के दावों और दंभों से उद्देश्यपूर्ण छुटकारा पाना है। पाठक बने रहना, और वह भी सामासिकता या अन्य पाठकों की सोहबत में, मूलतः ब्रिटिश हुक़ूमत को जायज़ ठहराने वाले इस तर्क को चुनौती देता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए आत्म-निपुणता (सेल्फ़-मास्टरी) एक ज़रूरी शर्त है। सामुदायिक पठन-पाठन और आलोचना प्रभुतावादी आत्म-संपूर्णता और विशेषज्ञता को नकारना है, जो समतावादी मुक्ति की संभावनाओं के दरवाज़े खोलता है। यहाँ उपनिवेशवाद- विरोधी पाठक एक ऐसा फ़िगर/मूरत है जो प्रभुत्ववादी ज्ञान या प्रभुत्व स्थापना हेतु कार्यशील साहित्य का उपभोक्ता मात्र नहीं, बल्कि यह ऐसा इंक़लाबी पाठक है जो अज्ञता को स्वाध्याय के उत्सव में शरीक होने का न्यौता मानता है और ज्ञान के प्रभुत्ववादी उद्देश्य को जानबूझ कर नकारता है। इस प्रकार ज्ञान, ज्ञान-रचना व ज्ञानार्जन की सत्तावादी प्रासंगिकता के ख़िलाफ़ उद्देश्य विहीन स्वाध्याय और निष्काम (इन्कॉन्सिक्विेन्सियलिस्ट) ज्ञानार्जन स्वरूपतः मुक्तिकामी हो जाता है। पुस्तकालय और पाठक समूह एक क्रांति के अड्डे की तरह बन जाते हैं।

उपनिवेशवाद विरोधी अध्ययन परंपराओं के इस सिद्धांत के लिए किताब की रूपरेखा एस. रंगनाथन के द *फाइव लॉज़ ऑफ़ लाइब्रेरी साइंस* की परिचर्चाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करती है। लाइब्रेरियन-दार्शनिक रंगनाथन के दूसरे और तीसरे नियम, एवरी रीडर हैज़ हिज़ बुक, एवरी बुक हैज़ इट्स रीडर ने भारत में पुस्तकालयों के एक क्रांतिकारी पुनर्गठन का प्रस्ताव रखा। जो मुख्य तौर पर पाठक को केंद्रीय भूमिका में रखता है। रंगनाथन सुझाव देते हैं कि, ऐसी राष्ट्रीय पुस्तकालय प्रणाली जो 'सतत शिक्षा' और 'असीमित लोकतंत्र' केंद्रित हो, राष्ट्रीय संप्रभुता के लिए उत्प्रेरक हो सकती है।

लाला हरदयाल, भगत सिंह, महात्मा गांधी और बाबा साहेब भीम राव आंबेडकर इस किताब के नायक हैं. ज़ाहिर है 'नायकों' का चुनाव काफ़ी दिलचस्प है क्योंकि इन चारों हस्तियों को उत्तर औपनिवेशिक राष्ट्र की स्मृति में ऐसे कर्मठ एवं स्फूर्तिमान पुरुषों के रूप में याद किया जाता है जिनके राजनीतिक विचारों और विश्वासों ने आज़ाद भारत की रूपरेखा निर्धारित की। उन्हें 'निष्काम पाठक' के रूप में परखना एक विप्लवी उलटबाँसी (रेडिकल सबवर्जन) है। एलम यहाँ सवाल करते हैं कि आख़िर मौत की दहलीज़ पर पढ़ने के क्या मायने हैं? और

20 Mona das_Layout 1 22-02-2024 16:21 Page 454

इस जोख़िम भरे सवाल का जवाब पेश करते समय वह श्रमसाध्यता से यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि उपनिवेशवाद विरोधी राजनीतिक विचार की कल्पित भव्यता के विपरीत निष्काम स्वाध्याय की इसी ख़ास संस्कृति ने उस समय की वास्तविक राजनीति को व्यक्त किया। क्योंकि इन विचारकों/लेखकों की भविष्य में जीने अथवा इन विचारों के फलीभूत होने की ठोस उम्मीद नहीं थी। ये निर्वासन में, मृत्यु शैया पर, अपमान में या अस्वीकृत अनुभवों के बरअक्स लिखे गए ग्रंथ थे।

हरदयाल की कल्पना

अंग्रेज़ी सरकार के अल्फ़ाज़ में 'सभी भारतीय आंदोलनकारियों में से सबसे ख़तरनाक' लाला हरदयाल थे, जिनको इस विस्तृत अध्ययन में शामिल किया गया है। यहाँ विषय उनकी ग़दर पार्टी का हिंसावाद न होकर उनकी साहित्यिक परिकल्पना और स्वाध्याय है। लेखक ने लाला हरदयाल के 19वीं सदी के पाश्चात्य दर्शन के जीवन-पर्यंत स्वाध्याय को एक ऐसे उपनिवेशवाद विरोधी परंपरा के रूप में देखा है जो एक क्रांतिकारी आत्म-निर्माण प्रक्रिया को दिशा प्रदान करता है, जो भविष्योन्मुखी समतामूलक समाज-निर्माण की ओर अग्रसर है। हरदयाल के लिए स्वाध्याय एक रोज़मर्रा की एक ऐसी सहकारी और सामुदायिक गतिविधि थी जिसे गुरुद्वारे जैसे सार्वजनिक स्थानों में अमलीज़ामा पहनाया जा सकता था। अक्सर विरोधाभासी माने जाने वाले दार्शनिकों के अध्ययन से हरदयाल ने 'एकीकृत' दर्शन ईजाद किया और एक ऐसे 'विश्वराज्य' की कल्पना की जिसने साम्राज्यवादी राजनीति से संचालित समय के एकरेखीय एकजातीय स्वरूप (एंप्टी होमोजिनियस टाइम) को धता बताया और एक बहुस्तरीय-बहुजातीय समय की वैश्विक शमलियत का भविष्य बुना। हरदयाल की नूतन वैश्विक परिकल्पना और उसके नए सौंदर्यशास्त्र की निर्मिति के केंद्र में लेखकीय बहुलता थी। एलम ने अपनी बात रखने के लिए हरदयाल के प्रकाशित ख़तो-किताबत और राजनैतिक पर्चों – विशेष रूप से *ग़दर दी गूँज*, *बराबरी दे अर्थ*, *हिंट्स ऑफ़ सेल्फ़ कल्चर* आदि को ख़ासा ध्यान में रखा है।

आंबेडकर : विज्ञान

डॉ. आंबेडकर, 50,000 से अधिक पुस्तकों का निजी संग्रह करने वाले एक उत्साही पाठक थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि, वह 'एक कठिन व्यक्ति' थे क्योंकि 'किताबें (उन्हें) पत्नी और बच्चों की तुलना में अधिक प्रिय थीं।' अपने राजनीतिक तर्कों, जो कि समान रूप से उपनिवेश और जाति विरोधी थे, को गढ़ने के लिए आंबेडकर स्वाध्याय को अति महत्त्वपूर्ण मानते थे। एलम आंबेडकर को 'अध्ययन का सिद्धांतकार' कहते हैं; उनका तर्क है कि आंबेडकर की परियोजना में अध्ययन और आलोचना वस्तुतः वृहत्तर सामाजिक और राजनीतिक कार्य हैं जो पहचाने जाने, मान्यता पाने और सूचीबद्ध होने की लेखकीय अभिलाषा से परे हैं। आंबेडकर बख़ूबी वाक़िफ़ थे कि 'पहचाना जाना, सूचीबद्ध होना और मान्यता पाना वे शर्तें भी हैं जिन पर जाति व्यवस्था अवस्थित रहती है, और जाति

20 Mona das_Layout 1 22-02-2024 16:21 Page 455

उत्पीड़न संभावित रहती है। आंबेडकर के स्वाध्याय का उद्देश्य इसलिए भी पहचान को अप्रासंगिक बनाना था। यह अकारण नहीं कि वे व्यक्ति की असीम स्वायत्तता,उसकी उदार असाधारणता, उसकी आत्म-निपुणता और पहचानवादी विशेषज्ञता को ख़ारिज करते हैं।

मनुस्मृति और उसकी प्रभुता के प्रति आंबेडकर की प्रतिक्रिया पर इस किताब में लंबी बहस है। उन्होंने 1927 में सार्वजनिक रूप से *मनुस्मृति* को जलाते हुए, हिंदू क़ानून के प्राधिकार की अस्वीकृति का संकेत दिया। लेकिन इस घटना के बाद वे इस ग्रंथ के साथ लगातार जूझते हैं। जाति-विध्वंस की उनकी परियोजना मनुस्मृति के सहपाठन पर बल देती है। आंबेडकर द्वारा मनु का बारीक सामाजिक अध्ययन-विश्लेषण उसके श्रेष्ठतावादी बोध और विचार को ख़ारिज करने से कहीं आगे निकल जाता है। वह पाठक के स्वाध्याय व आलोचना कर्म को समतावादी जाति-विरोधी समाज के निर्माणकारी समुदाय में बदल देता है। दूसरे शब्दों में, आंबेडकर ने 'पाठक' के क़द को समतावादी, जाति-विरोधी समाज के एक महत्त्वपूर्ण और मौलिक हिस्से के रूप में सार्वभौमिक बना दिया।

यह पुस्तक एक ऐसे संक्रामक 'समाज प्रेमी व्यक्तित्व' के उद्भव की संभावनाओं पर एक समृद्ध चर्चा प्रस्तुत करती है जो आत्म-निपुणता या स्वयंप्रभुता/प्राधिकार का दावा करने में असमर्थ है। आंबेडकर के इस पक्ष की पड़ताल में एलम कहते हैं कि 'समाज प्रेमी-व्यक्तित्व' कोशिका विज्ञान की अराजक (भाषा) दुनिया से निकलता है और मुक्ति की राजनीति में सक्षम होने के लिए सामाजिक अंतर्मिलन से गुज़रता है। जाति का उन्मूलन एक रचनात्मक उन्मूलन बन जाता है जो नव-निर्माणकारी और मुक्तिधर्मी है।

इस पुस्तक में आंबेडकर पर लिखा गया अध्याय अपने तर्कों में विस्तृत और मौलिकता में अभूतपूर्व है। इसमें एलम ने मानविकी और समाज विज्ञान के 20 वीं सदी के शुरुआती बदलावों, ख़ासकर भाषाशास्त्र और समाजशास्त्र के उत्थान के आलोक में, आंबेडकर के स्वयंप्रभुता/प्राधिकार-विरोधी आलोचना को परखा है।

गांधी : खोई हुई बहस

'प्राधिकारवाद से संन्यास और त्याग' इस पुस्तक का केंद्रीय विषय है जो गांधी और गांधीवादी लोकाचार के साथ अच्छी तरह से फिट बैठता है। महात्मा ने न केवल अपने औपचारिक कपड़े त्यागे, यहाँ तक कि अपने विचारों को सुसंगत बनाने के ख़याल और प्राधिकार भी आसानी से छोड़ दिए। वह बदलाव, सार्वजनिक माफ़ी, बहस हारने और हार को स्वीकार करने के लिए जाने जाते थे। संक्षेप में गांधी 'समझ में नहीं आने की अपनी (अ) क्षमता पर भी ख़ुश रहते हैं'। एलम सुझाव देते हैं कि, ये नुक़सान, विफलताएँ, विसंगतियाँ और माफ़ी गांधीवादी उपनिवेशवाद विरोध को समझने के एकमात्र प्रवेशद्वार हैं जो अनिवार्य रूप से प्राधिकार विरोधी थे।

एलम ने 1939 में गांधी द्वारा माँगी गई तीन क्षमा याचनाओं पर फिर से विचार किया। ये ख़ुद ही सत्याग्रह की विफलता के

20 Mona das_Layout 1 22-02-2024 16:21 Page 456

लिए स्वीकार किए गए थे, यानि यह एक क़बूलनामा था सत्याग्रही के एक ऐसे सत्य से ग्रस्त होने की संभावना का जो ग़लत भी हो सकती है। एलम गांधी की बहसों में उग्र समतावाद की राजनीति को देखते हैं, जो इस तरह के बयानों में समाप्त होती है – 'मुझे मूर्ख के रूप में छोड़ दो' या 'मुझे इस बहस को खोने की अनुमति दें' या 'मुझे ग़लत होने की अनुमति दें'। ये कथन अनिवार्य रूप से दोहरे संन्यास की प्रक्रिया का संकेत देते हैं क्योंकि इन क्षणों में गांधी न केवल अपने सत्य या विश्वास को बल्कि स्वयं को भी त्याग देते हैं। गांधी त्याग करने की अपनी क्षमता का त्याग करते हैं, और इसलिए दूसरों को उनके लिए ऐसा करने के लिए कहते हैं।

जन्म नियंत्रण पर अमेरिकी प्रजनन अधिकार कार्यकर्त्ता मार्गरेट सेंगर के साथ की बहस गांधी की मौन मुस्कान पर समाप्त हुई। वह एक विशेषज्ञ के रूप में देखे जाने से अधिक अज्ञ होने के इच्छुक नज़र आते हैं क्योंकि वे मानते थे कि विशेषज्ञता और उससे गुँथा प्राधिकार बराबरी के पायदान से नहीं बल्कि ऊँचाई के आसन से नियोजित होता है। गांधी इसलिए बस यह दावा करते हैं कि उन्होंने अपनी 'परिष्कृत बहनों' की सोहबत में इसकी थोड़ी समझ हासिल कर ली है। जब गांधी वह मौन मुस्कान देते हैं तो वह महज़ प्रतिक्रिया देने की भी अपनी क्षमता को तज देते हैं, और ऐसा करके, गुज़ारिश करते हैं कि सेंगर उन्हें छोड़ दें।

एलम की व्याख्या में *हिंद स्वराज* के मायने भी पलट जाते हैं : गांधी, जिन्हें आमतौर पर इस किताब के संपादक के रूप में देखा जाता है, इस पुस्तक के पाठक बन जाते हैं। एलम के मतानुसार, अपनी सारी उलझन और भ्रांतियों के बीच गांधी पाठक की तरह ही लगने लगते हैं। वास्तव में, एलम *हिंद स्वराज* को प्रभुता और प्राधिकार के परित्याग के इर्द-गिर्द केंद्रित उपनिवेशवाद विरोधी सौंदर्यशास्त्र के एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। *हिंद स्वराज* के गुजराती संस्करण में एक अस्वीकरण है – 'ये विचार मेरे हैं, और फिर भी मेरे नहीं हैं' और अंग्रेज़ी संस्करण 'कुछ आधिकारिक लेखकों' की एक परिशिष्ट सूची प्रदान करता है। एलम के अध्ययन में मौलिकता का यह अस्वीकरण गांधी (*हिंद स्वराज* के लेखक) को लाखों अन्य पाठकों के साथ एकमात्र पाठक के रूप में प्रस्तुत करता है। चाहे वह *गीता* के भाष्यकार हों, रस्किन के अनुवादक हों, या सत्य के प्रयोगकर्त्ता गांधी हमेशा अपने को पाठक की भूमिका में ही रखते हैं।

भगत सिंह की जेल नोटबुक

फाँसी के साए में पढ़ने का क्या मतलब है? एलम के अनुसार, परिणामविहीन होने की वजह से ऐसी परिस्थिति में पढ़ना एक क्रांतिकारी कार्य था। यह सत्ता को पलटने की पूर्व-निर्देशित निश्चितता के विपरीत वर्तमान और उसकी निष्फलता के साथ जीने का जश्न है। इसलिए स्वाध्याय को केंद्र में रखने की एलम की यह क़वायद क्रांति के उस प्रारूप को पुनर्निरूपित करने की कोशिश भी है जो एकवचनीय, घटना-प्रधान व परिणाम धर्मी होने को प्राथमिकता देता है और बहुवचनीय, लघुस्तरीय गतिविधियों, धीमी अभिवृद्धि

20 Mona das_Layout 1 22-02-2024 16:21 Page 457

वाले बदलावों को ख़ारिज करता है। भगत सिंह के मामले में, फाँसी की प्रतीक्षा करते हुए अध्ययन करना इस अभिवृद्धि की अर्थवादी समझ की भी अवहेलना करता है : वर्तमान भविष्य में निवेश के रूप में प्रकट नहीं होता है! भगत सिंह की जेल नोटबुक का विश्लेषण करते हुए एलम कहते हैं कि उपनिवेशवाद विरोधी ग्रंथ लेखक और लेखकीय प्राधिकार और आत्म-निपुणता की धारणा को चुनौती देते हैं। लेखकीय प्राधिकार अक्सर रचनोपरांत प्राप्त होता है, जबकि भगत सिंह जैसे लोग परिणाम शून्यता और अनिश्चितता के यथार्थ को आत्मसात कर लिख रहे होते हैं। जेल नोटबुक/डायरी के विस्तृत नोट, ब्लॉक उद्धरण, ख़ाली पन्नों के साथ भगत सिंह के विसंगत और बिखरे विचार उनकी परिणाम शून्य व ग़ैर-लेखकीय (और इसलिए ग़ैर-प्राधिकारवादी) स्थिति के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है। एलम भगत सिंह के निबंध, 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' को समकालीन वैश्विक दार्शनिक परिवेश के उस अराजक माहौल का हिस्सेदार मानते हैं जिसमें तर्क बुद्धिवाद, सार्वभौमिकता जैसे विचार ढह रहे थे। दशकों बाद का फैनों का यह कथन – 'आओ कॉमरेड, यूरोपीय खेल आख़िरकार ख़त्म हो गया है, अब हमें कुछ और देखना चाहिए', उसी दार्शनिक कोलाहल का सार था।

यह पुस्तक भारत के उपनिवेशवाद विरोधी विचारकों को केंद्र में रखकर लिखी गई उत्तर-औपनिवेशिक सैद्धांतिकी की एक शानदार कृति है। एलम ने यह साबित करने के लिए सफल प्रयास किया कि उपनिवेश विरोधी विचारकों ने अपनी सियासी परिस्थितियों के आलोक में प्रभुतावादी प्राधिकार और आत्म-निपुणता को मुसलसल ख़ारिज किया।

हालाँकि, एलम ने अपने तर्कों के गढने में कुछ जल्दीबाज़ियाँ भी दिखाई हैं। जैसे उपनिवेशवाद विरोधी क्रांतिधर्मी विचारकों के प्रेरणा स्रोत क्या थे? यह सही है कि ये विचारक 'धरती के अभागे', 'हाशियाई' , 'नापाक' , और 'घायल' मानवता के साथ होने की ईमानदार कोशिश करते हैं। लेकिन क्या उनकी इस प्रतिबद्धता और उनके एंटी-ऑथॉरिटेरिऑन होने में इतना सीधा और सपाट रिश्ता है? अपने किरदारों के विपरीत एलम अपने तर्कों में कुछ ज़्यादा ही पूर्व-निश्चित और तयशुदा ज़ाहिर होते हैं। बहरहाल, विभिन्न अवधारणाओं और अनुशासनों के बीच लेन-देन करती हुई यह अद्वितीय किताब उत्तर-उपनिवेशवाद और आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारों में रुचि रखने वाले विद्वानों को ज़रूर पढ़ना चाहिए।